Shodhshauryam, International Scientific Refereed Research Journal
© 2019 SHISRRJ | Volume 2 | Issue 1 | ISSN : 2581- 6306

रघुवंश महाकाव्य में काव्य और रस के बीच के तुलनात्मक परिशीलन का अध्ययन

मनोज कुमार सिंह
C- 204, पुष्पांजलि इन्क्लेव, उत्तरी मंदिरी, पटना, बिहार
mksingh240313@gmail.com

शोध-सार

काव्य का सामान्य अर्थ है 'कविकृति'। 'कवि' शब्द में 'ण्यत्' प्रत्यय के योग से 'काव्य' शब्द निष्पन्न होता है। कवि-मानस में जन्म-जन्मान्तर से संचित संस्कार जब समुचित अवसर पाकर अकस्मात् स्वतः शब्दार्थमय रूप में प्रस्फुटित होता है तो उसे काव्य की संज्ञा दी जाती है। यह केवल शुष्क शब्दार्थ-युगल नहीं होता, अपितु कवि की नवनवोमेषशालिनी प्रतिभा से अन्वित होने के कारण इसमें कुछ अलौकिक गुण निहित होते हैं। यह काव्य एक ओर कवि प्रतिभा का परिचायक होता है तो दूसरी ओर तत्कालीन सामाजिक जीवन का प्रत्यायक भी। 'काव्य क्या है ?' इसे एक निश्चित रूप में बतलाना असंभव-सा है। प्रत्येक युग में काव्य का स्वरूप बदलता रहा है। विद्वानों की एतद् विषयक मान्यता परिवर्तित होती रही है। प्रत्येक युग का कवि अपने समय के अनुसार तथा जन-सामान्य की माँग के अनुसार काव्य की रचना करता है। जन सामान्य की चिन्तन-धारा कवि की कारयित्री प्रतिभा तथा प्रचलित परम्पराओं में

भिन्नता होने के कारण प्रत्येक युग में काव्य का स्वरूप स्थिर नहीं रह पाता । अतएव भिन्न-भिन्न युगों के काव्यलक्षणकारों ने अपने-अपने युग की मान्यताओं के अनुसार काव्य का लक्षण निर्धारित किया है ।

शब्द-संकेत- नवनवोमेषशालिनी, काव्य-लक्षण, कविकृति, कवि मानस, शब्दार्थमय

भूमिका

प्राचीन कव्यशास्त्र के प्रमुख छः सिद्धान्त–रस, अलंकार, रीति, ध्वनि, वक्रोक्ति और औचित्य सिद्धांत–वस्तुतः काव्य के दो पक्षों से ही संबंधित हैं–विषयपक्ष और शैलीपक्ष । रस, औचित्य और ध्वनि ये तीन सिद्धांत विषयपक्ष पर आधारित हैं और विषय की उत्कृष्टता का ही अंतिम उद्देश्य रखते है, किन्तु अलंकार, रीति और वक्रोक्ति का आधार भी अभिव्यक्ति शैली और उद्देश्य शैली की उत्कृष्टता है । काव्यात्मा का अन्वेषण सभी सिद्धांतों में काव्य की रमणीयता या सुन्दरता अथवा आह्लादकता के मूल कारण की खोज रहा है । रसवादियों को आह्लादकता भावजन्य रस में प्रतीत हुई तो ध्वनि वादियों को वह रसान्द भी व्यंग्य ध्वनि में, अलंकारवादियो को अलंकार विधान में, रीतिवादी वामन को गुण-रीति योजना में वक्रोक्तिवादी कुन्तक को वक्रोक्ति में तथा औचित्यवादी क्षेमेन्द्र ने काव्य-सौंदर्य का आधार काव्य तत्त्वों के औचित्यपूर्ण विधान में ही अनुभव किया । सब सिद्धांत शब्दार्थ को

काव्य-शरीर मानकर चलते हैं, इस दृष्टि से सबका प्रस्थानबिन्दु एक ही है, पर गन्तव्य दो भिन्न स्थान है । अलंकार, रीति और वक्रोक्ति शब्दार्थ चमत्कार से प्रारंभ करते हैं, रसभाव को भी उसी में समेटते हुए शब्दार्थ शैली चमत्कार में ही विश्रान्ति पाते हैं, किन्तु रस, ध्वनि और औचित्य शब्दार्थ से प्रारंभ करके शब्दार्थ चमत्कार में नहीं उलझते, अपितु रसभाव, विषय ध्वनि या विषय औचित्य को ही अपना लक्ष्य बनाते हैं । इस प्रकार अलंकारादि तीन सिद्धांतों को शैली या अलंकार सिद्धांत कहा जा सकता है और रस ध्वनि तथा औचित्य इन तीन को अलंकार्य सिद्धांत कह सकते है । प्राय: कहा जाता है कि अलंकारादि इन सिद्धांतों और समुदायों का प्रवर्तन काव्यात्मा की गवेषणा का ही प्रतिफल है ।

रस-स्वरूप :

रस काव्य का जीवनाधायक तत्त्व है । इसीलिए आचार्य विश्वनाथ ने 'रसात्मक वाक्य' को ही काव्य की संज्ञा दी है । काव्य को जीवित-जाग्रत रखनेवाला एकमात्र सारतत्त्व रस ही है । रस के बिना काव्य की सत्ता स्वीकार ही नहीं की जा सकती ।

वाक्यं रसात्मकं काव्यम् । .... रस एवात्मा
साररूपतया जीवनाधायको यस्य ।
तेन विना तस्य काव्यत्वानङ्गीकारात् ।[1]

रस को काव्य की आत्मा मानने में अनेक विद्वान् सहमत हैं ।

काव्यस्यात्मनि संज्ञिनि रसादिरूपे न कस्य चिद्विमतिः ।[2]

पण्डितराज जगन्नाथ ने श्रुति के द्वारा प्रभावित इस तथ्य को मुक्तकण्ठ से स्वीकार किया है ।

रसो वै सः । रसं ह्येवायं लब्ध्वाऽऽनन्दी भवति

इति श्रुतिः सकलसहृदयप्रत्यक्षं चेतिप्रमाणद्वयम् ।[3]

आचार्य विश्वनाथ ने इसे अखण्ड स्वप्रकाशनन्द एवं ब्रह्मास्वाद सहोदर की संज्ञा दी है ।

सत्त्वोद्रेकादखण्डस्वप्रकाशानन्दचिन्मयः ।

वेद्यान्तरस्पर्शशून्यो ब्रह्मास्वादसहोदरः ।।[1]

धनञ्जय ने नाटक में रसातिरिक्त प्रयोजन को स्वीकार करनेवालों का उपहास किया है ।

आनन्दनिस्यन्दिषु रूपकेषु व्युत्पतिमात्रं फलमल्पबुद्धिः ।

योऽपीतिहासादिवदाह साधुस्तस्मै नमः स्वादुपराङ्मुखाय ।।[2]

संस्कृत-काव्यशास्त्र में प्रतिपादित रससिद्धांत अत्यन्त प्राचीन है । शतपथब्राह्मण में निश्चित रूप से रस का प्रयोग मधु अर्थ में हुआ है–'रसौ वै मघु' । प्रारंभ में रस का मूल अर्थ-अन्न के षड्रस एवं वनौषधियों के द्रवभूत रस से ही संबंधित था किन्तु आगे चलकर वैदिकस्क्तों में वह

सोमरस का पर्याय हो गया । सोमरस को अमृततुल्य माना जाता था । फलत: रस शब्द अमृत का पर्याय बन गया । उपनिषद्काल में रस सच्चिदानन्द ब्रह्म का वाचक बन गया । यहाँ आकर 'रस' शब्द का स्थूल अर्थ तिरोहित हो गया और वह सर्वथा ब्रह्मानन्द का वाचक बन गया । संस्कृत काव्यशास्त्र में रस शब्द का लाक्षणिक प्रयोग भी हुआ है ।

वैदिक वाङ्मय में सामान्य अर्थ में प्रचलित रस शब्द काव्यशास्त्र में आकर विशेष अर्थ में प्रयुक्त होने लगा । काव्यजगत् में रस सिद्धांत के आदिप्रवर्तक आचार्य भरत ही माने जाते हैं । राजशेखर ने इस के व्याख्याता के रूप में काव्य पुरुष के अठारह शिष्यों में एक नन्दीकेश्वर को भी बतलाया है । पर नन्दीकेश्वर की कोई कृति उपलब्ध नहीं होने से भरत को ही रस-सिद्धांत का संस्थापक कहा जाता है । रस भरतकाल में केवल नाटक का ही तत्त्व था, काव्य में उसका कोई स्थान नहीं था । किन्तु उसने क्रमश: काव्य में भी स्थान पाया और काव्य के ही अन्तर्गत नाटक की भी गणना होने लगी ।

नाटक में सहृदय को रसानुभूति कैसे होती है–इस विषय में भरत का रससूत्र है–

विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगाद्रसनिष्पत्ति:[1]

इस सूत्र में प्रयुक्त 'संयोग' और 'निष्पत्ति' ये दो पद सन्देहास्पद हैं । आचार्य भरत ने इसकी कोई स्पष्ट व्याख्या नहीं की है । परवर्ती विद्वानों ने इन दोनों पदों का अर्थ भिन्न-भिन्न प्रकार से लगाया है । इस सूत्र के मुख्य व्याख्याकार है–भट्टलोल्लट, श्रीशंकुक, भट्टनायक और अभिनवगुप्त ।

भट्टलोल्लट क उत्पत्त्विाद, श्रीशंकुक का अनुमितिवाद, भट्टनायक काम मुक्तिवाद और अभिनवगुप्त का अभिव्यक्तिवाद प्रसिद्ध है । इनमें अभिनवगुप्त की व्याख्या बहुत वैज्ञानिक है । इन्होंने भरत के रससूत्र के संयोग का अर्थ व्यंग्य–व्यंजक भाव 'निष्पत्ति' का अर्थ अभिव्यक्ति किया है । इन्होंने सामाजिकों में स्थित स्थायिभाव को ही रसानभूति का निमितभूत माना है । सामाजिकों के मूल मन:सयोग अर्थात् वासना या संस्काररूप से स्थित रत्यादि स्थायिभावों का साधरणीकरण होता है, तब वे ृंगारान्द रसों के रूप में अभिव्यक्त होते हैं । रसानुभूतिक दशा में सामाजिक इतना आनंदविभोर हो जाता है कि उसको ज्ञान ही नहीं रहता कि ये विभाव मेरे हैं, शत्रु के हैं या तटस्थ के हैं । ऐसी दशा में तन्मयीभाव से युक्त सामाजिक वेद्यान्तर स्पर्शशून्य हो जाता है और उसे ब्रहमानन्द सहोदर अखण्ड चिद्रूप रस का आस्वादन होता है ।[1]

रस-प्रकार :

आचार्य भरत ने आठ प्रकार के रस बताये हैं–

शृंगार–हास्य–करुण–रौद्र–वीर–भयानकाः ।

बीभत्साद्भुतसंज्ञौ चेत्यष्टौ नाट्ये रसाः स्मृता ।।[2]

शृंगार– शृंगार के दो भेद हैं–सम्भोग और विप्रलम्भ । उनमें से सम्भोगशृंगार परस्पर अवलोकन, आलिंगन, अधरपान, चुम्बन इत्यादि के भेद से कई प्रकार का हो जाता है । उदाहरण–

शून्यं वासगृहं विलोक्य शयनादुत्थाय किञ्चिच्छन्न–

र्निद्राव्याजमुपागतस्य सुचिरं विर्वण्य पत्युर्मुखम् ।

विस्रब्धं परिचुम्ब्य जातपुलकामालोक्य गण्डस्थलीं

लज्जानम्रमुखी प्रियेण हसता बाला चिरं चुम्बिता ।।[1]

यहाँ नायक–नायिका आलम्बन विभाव; मुख–निर्वर्णन, चुम्बनादि अनुभाव; लज्जा–हास आदि व्याभिचारीभाव तथा रतिस्थायिभाव है । इनसे परिपुष्ट यहाँ सम्भोगशृंगार की अभिव्यक्ति होती है ।

विप्रलम्भशृंगार का उदाहरण मेघदूत से दिया जा रहा है–

त्वामालिख्य प्रणयकुपितां धातुरागैः शिलाया–

मात्मानं ते चरणपतितं यावदिच्छामि कर्तुम् ।

अस्रैस्तावन्मुहुरुपचितैर्दृष्टिरालुप्यते मे

क्रूरस्तस्मिन्नपि न सहते संगमं नौ कृतान्तः ।।[2]

यहाँ यक्ष-दक्षिणी आलम्बन विभाव; चित्रलेखन, पादपतन, रुदन आदि अनुभाव; उद्वेग, चिन्ता आदि व्यभिचारीभाव है । यहाँ शापहेतुक विप्रलम्भ ृंगार है ।

हास्यरस– उदाहरण–

आकुञ्च्य पाणिमशुचिं मम मूर्ध्नि वेश्या

मन्त्राम्मसां प्रतिपदं पृषतैः पवित्रे ।

तारस्वनं प्रथितथूत्कमदात् प्रहारं

हा हा हतोऽहमिति रोदिति विष्णुशर्मा ।।[3]

अर्थात् वेश्या ने अपने अपवित्र हाथ को सिकोड़कर जोर से धूत्कार करते हुए अभिमंत्रित जल से पवित्र मेरे शिर पर प्रहार किया, हाय हाय मार डाला–यह कहकर विष्णुशर्मा रो रहा है ।

यहाँ विष्णुशर्मा आलम्बन विभाव है, रुदन उद्दीपन है; स्मित, हसित, अतिहस्ति आदि अनुभाव हैं । हास स्थायिभाव है ।

करुणरस– उदाहरण–

करुणे क्व जटानिनिबन्ध्नं

तव चेदं क्व मनोहरं वपुः ।

अनयोर्धटना विधेः स्फुटं

ननु खड्गेन शिरीषकर्तनम् ।।[1]

इस पद्य में रामवनवास के शोक से व्याकुल राजा दशरथ की हुई दैवनिन्दा है । दशरथ की उक्ति है–'कहाँ जंगल में जाकर जटाओं का बाँधना और कहाँ तुम्हारा यह सुकुमार देह । विधि का इन दोनों को जोड़ना वैसा ही है जैसा तलवार से शिरीष को कोमल फूल का काटना ।'

यहाँ राम आलम्बन विभाव है । जंगल में जाकर जटा बाँधना, सुकुमार शरीर से वन्य कष्ट को सहना आदि उद्दीपन विभाव है । दशरथ का विलाप अनुभाव है । मेह, स्मृति, विषाद आदि व्यभिचारी भाव हैं । यहाँ स्थायिभाव शोक है ।

रौद्ररस– उदाहरण–

कृतमनुमतं दृष्टं वा यैरिदं गुरुपातकं
मनुजपशुभिर्निमर्यादैर्भवद्भिरुदायुधैः ।
नरकरिपुणासार्धं सभीनकिरीटिना
मयमहनसृङ्नेदोमांसैः करोमि दिशां बलिम् ।।

यह पद्य 'वेणीसंहार' के तृतीय अंक से उद्धृत है । द्रोणाचार्य का निर्दयतापूर्वक अनुचित ढंग से वध किये जाने का समाचार पाकर अश्वत्थामा क्रोधित हो गया । अत्यधिक क्रोध के कारण अश्वत्थामा ने क्रमभंग कर दिया है । धृष्टद्युम्न ने मारा, अतएव इनका नाम पहले लेना चाहिए था, कृष्ण ने अनुमोदन किया, अतः उसे बाद कृष्ण का नाम लेना चाहिए था; भीम, अर्जुन आदि ने खड़े-खड़े यह पाप देखा, हन्ता को नहीं रोका,

अतएव द्रष्टा के नाम सबसे अन्त में लेना चाहिए था, किन्तु वैसा नहीं हुआ । क्रोधावेश में सबसे पहले कृष्ण का ही नाम ही ले लिया गया है । यहाँ अश्वत्थामा का क्रोध स्थायी भाव है । अश्वत्थामा आलम्बन विभाव; पिता द्रोणाचार्य की मृत्यु उद्दीपन विभाव; क्रोधावेश में क्रमभंगपूर्वक बोलना, हन्ता, अनुमन्ता एवं द्रष्टा के मांस से दिशाबलि देने की घोषणा आदि अनुभाव है । विषाद, क्रोध मरण व्यभिचारीभाव है ।

वीररस– उदाहरण–

क्षुद्राः संत्रासमेते विजहत हरयः क्षुण्णशक्रेभकुम्भा
युष्मेद्देहेषु लज्जां दधति परमी सायका निष्पतन्तः ।
सौमित्रे तिष्ठ पात्रं त्वमसि नहि रुषां नन्वहं मेघनादः ।
किञ्चिद्भ्रूमङ्गलीलानियमितजलधिं राममन्वेषयामि ।।[1]

यह पद्य 'हनुमन्नाटक' के एकादश अंक से लिया गया है । लकायुद्ध के समय यह इन्द्रजित की उक्ति है । यहाँ राम आलम्बन विभाव है । राम से लड़ने का उत्साह स्थायिभाव है । राम द्वारा समुद्रबन्धन उद्दीपन विभाव, क्षुद्रवानरादि की उपेक्षा और परमप्रतापी राम का अन्वेषण अनुभव, ऐरावत के गण्डस्थल के भेदन की स्मृति और 'बाण लज्जित होते हैं' इससे गम्य गर्व व्यभिचारिभाव ह ।

दानवीर, धर्मवीर, युद्धवीर, दयावीर–ये वीररस के चार प्रकार बतलाये गये हैं ।

भयानक रस–इसका उदाहरण अभिज्ञानशाकुन्तल के प्रथम अंक से लिया गया है–

ग्रीवाभंगाभिरामं मुहुरनुपतति स्यन्दने दत्तदृष्टिः
पश्चार्द्धेन प्रविष्टः शरपतनभयाद् भूयसा पूर्वकायम् ।
दर्भैरर्द्धावलीढैः श्रमविवृतमुखभ्रंशिभिः कीर्णवर्त्मा
पश्योदग्रप्लुतत्वाद्वियति बहुतरं स्तोकमुर्व्यां प्रयाति ।।[2]

यहाँ मृग का पीछा करने वाला राजा दुष्यन्त आलम्बन विभाव; बाण लगने का भय और अनुसरण उद्दीपन विभाव; गर्दन मोड़ना और भागना अनुभाव और त्रास, श्रम आदि व्यभिचारिभाव हैं । यहाँ राजा से उत्पन्न भय स्थायिभाव है ।

वीभत्स रस–मालतीमाधव के पंचम अंक से अधोलिखित उदाहरण संकलित है–

उत्कृत्योत्कृत्य कृतिं प्रथममथ पृथूत्मेधभूयांसि मासा–
न्यसस्फिक्पृष्ठपिण्ड्याद्यवयवसुलमान्युग्रपूतीनि जगध्वा ।
आर्त्तः पर्यस्तनेत्रः प्रकटितदशनः प्रेतरङ्कः करङ्का–
दङ्कस्थादस्थि संस्थं स्थपुटगतमपि क्रव्यमव्यग्रमति ।।[1]

यहाँ दरिद्रप्रेत आलम्बन; खाल उखाड़ना, मांस खाना उद्दीपन; उसे देखने वाले का नाक बन्द करना, मुँह फेर लेना, थूकना आदि अनुभाव; उद्वेग आदि व्यभिचारीभाव हैं । 'जुगुप्सा' स्थायिभाव है । उनसे परिपुष्ट वीभत्स रस की अभिव्यक्ति होती है ।

वीभत्स रस–जनकपुर में राम ने धनुष तोड़ा । धनुष भंग के बहुत देर बाद तक ध्वनि चारों ओर फैलती रही । उसकी प्रतिध्वनि सुनकर लक्ष्मण को विस्मय होता है–

दोर्दण्डाञ्चितचन्द्रशेखरधनुर्दण्डावभङ्गोंद्यत–

ष्टंकारध्वनिरार्यबालचरितप्रस्तावना डिण्डिमः।

द्राक्पयस्तकपालसंपुटमिलद्ब्रमाण्डभाण्डोदर–

भ्राम्यत्पिण्डितचण्डिमा कथमहो नाद्यापि विश्राभ्यन्ति ।।[2]

इस पद्य में लक्ष्मण का विस्मय स्थायिभाव और टंकार ध्वनि आलम्बन; उसकी अतिदीर्घता उद्दीपन है । इस प्रकार महिमा का वर्णन अनुभाव है । इस वर्णन से अनुमित हर्ष आदि व्यभिचारी है । इन सबसे परिपुष्ट अद्भुतस की अनुभूति होती है ।

शान्त रस–सर्वप्रथम आचार्यमम्मट ने शान्त को रस मानकर भरत द्वारा संकेतित अष्टविधा रस को नवसंख्यात्मक बना दिया । शान्त का स्थायिभाव है निर्वेद ।[1]

अहौ वा हारे वा कुसुमशयने वा दृषदि वा

मणौ वा लोष्ठे वा बलवति रिपौ वा सुहृदि वा ।

तृणे वा स्त्रैणे वा ममदृशोयान्ति दिवसा:

क्वचित् पुण्यारण्ये शिव शिव शिवेति प्रलपत: ।[2]

यहाँ मिथ्या प्रतीत होने वाला जगत् आलम्बन; तपोवनादि उद्दीपन; सर्प और हार आदि में समबुद्धि अनुभाव; धृति, मति और हर्षादि व्यभिचारी तथा निर्वेद स्थायिभाव से शान्तरस की अभिव्यक्ति होती है ।

आगे चलकर भक्ति और वात्सल्य को भी पृथक् रस की संज्ञा दी गयी । इनका स्थायिभाव रति है । संस्कृत के प्राचीन आचार्यों ने इन दोनों रसों का अन्तर्भावशृंगार में ही कर लिया है, क्योंकि सबका स्थायिभाव एक ही (रति) है ।

इनके अतिरिक्त रसाभाव और भावामास भी हैं । रस तथा भावों का अनुचित रूप से वर्णन 'रसाभास' तथा भावाभास है–

"तदाभासा अनौचित्य प्रवर्तिता: ।[1]

सहायक ग्रन्थ-सूची

1 आर्यासहस्रारत्मμडॉ जगन्नाथ पाठक, प्रका-गंगानाथ झा केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ, चन्द्रशेखर आजाद पार्क, इलाहाबाद, 1945।

2 औचित्य विचार चर्चाक्षेमेन्द्र हरिदास संस्कृतग्रन्थमाला काशी, 1933।

3 उपमा कालिदासस्यडॉ शशिभूषण दास गुप्त, प्रका-नेशनल पब्लिशित हाउस, दिल्ली 1962।

4 उत्तररामचरितμले-भवभ्ति, प्रका-रामनारायण लाल, बेनीप्रसाद, इलाहाबाद-2, 1961।

5 ट्टग्वेदकाल में परिवार संबंधμले शिवराज सिह, प्रका-लीलाकमल प्रकाशन, मेरठ।

6 हिस्ट्री ऑव क्लासिक लिटरेचरμडॉ कृष्णमचारी, प्रका- मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी, 1970।

7 कठोपनिषद (शांकर भाष्य सहित) गीता प्रेस, गोरखपुर।

8 कथासरित्सागर: एक सांस्कृतिक अध्ययन, ले डॉ वाचस्पति द्विवेदी, प्रका सुशील प्रकाशन, पटनासिटी, 1977।

9 कला कल्पना और साहित्यμले डॉ सुधीन्द्र, प्रका-साहित्य रत्न भण्डार, आगरा, विसं 2013।